संत कवयित्री सबचन दासी

डॉ0 शम्पा चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर एवं प्रभारी, संगीत (गायन) विभाग
वी0 एम0 एल0 जी0 कॉलेज, गाजियाबाद
ईमेलः shampa1410@gmail.com

सारांश

संत सुबचन दासी का संपूर्ण साहित्य जनदृकल्याण एवं समाजहित हेतु अपेक्षित है। उन्होंने उस परमसत्ता को सृष्टि के समस्त उपादानों में माना हैं। मन का भ्रम ही माया है। जगत नाशवान है। ज्ञान, योग, भक्ति, प्रेम के मार्ग द्वारा प्रभु को जाना जा सकता है। सामाजिक विचारधारा के अन्तर्गत जातिवाद एवं वाह्याचार का खंडन, तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा का विरोध, हिन्दूदृमुस्लिम एकता का प्रतिपादन तथा कामिनी स्त्री की धोर निन्दा, पतिव्रता स्त्री की प्रशंसा को अपने काव्य का विषय बनाकर समाज को एक नया मार्ग दिखाया। बहुत खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि ऐसे साहित्य सम्पन्न कवयित्री का नाम इतिहास के पन्नों से गायब है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' में मात्र इनका परिचय दिया है। सन् 1914 ई. से 1934 ई. के मध्य पाँच भागों में इनका साहित्य प्रकाशित हुआ हैदृ प्रेमतरंगिणी दृ1914 ई., प्रेमतरंगिणी भागदृदो 'विज्ञान सागर' 1918 ई., प्रेमतरंगिणी भागदृतीन 'विदेह मोक्ष प्रकाश', प्रेमतरंगिणी भागदृचार 'अपूर्व विलास' 1923 ई., प्रेमतरंगिणी भागदृपाँच 'अनुभव प्रकाश' द्वि. सं. 1934 ई.।

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः
डॉ0 शम्पा चौधरी
संत कवयित्री सबचन दासी
शोध मंथन,
सितम्बर 2017,
पेज सं0 69—78
http://anubooks.com/?page_id=581
Artcile No. 11 (SM 449)

डॉ0 शम्पा चौधरी

संत कवयित्री सुबचन दासी का जन्म सन् 1870 ई. में उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिला के 'डेहमा' नामक गॉव में हुआ था।1 कायस्थ परिवार में माता मुन्नी देवी के गर्भ से अवतरित हुई थी। इनके पिता का नाम मुंशी दलसिंगार लाल था, जो हरि भक्ति एवं साधुदृसंतों से बड़ा प्रेम रखते थे।2 दासी जी का स्वभाव वचपन से ही भक्तिन प्रवष्ति का था। दरवाजा पर जब कोई साधुदृसंत आता था तो उनका सत्कार करने के पश्चात् भजन गायन हेतु हठ करती थी। परिवार शिक्षित होने के कारण इनकी शिक्षा कैथी लिपि ज्ञान तक हुई थी। देवनागरी लिपि भी वह पढ़ लिया करती थी। मात्र चौदह वर्ष की आयु में इनका विवाह बलिया जिला के 'बहोर छपरा' में युगल किशोर लाल से हुआ था।3 युगल किशोर पेशे से कचहरी में काम करते थे तथा उनका गुरु धराना 'उदासी सम्प्रदाय' था। सुबचनदासी जी जब अपने ससुराल में आई, तो प्रभु भक्ति में समाधि 'ांटों लगाती थी। जिससे ससुराल वालों को भौतिक दोष का संदेह हुआ। इसलिए अपने गुरु धराना के उदासी संत हीरादास जी के पास ले गये4, जिनका मठ भष्ु आश्रम के पास 'नागाजी मठ' के नाम से जाना जाता है। संत हीरादास जी अपने आध्यात्मिक तपोबल से पहचान गये कि ये प्रभुदृप्रेम में बावरी बनी है। उन्होंने युगल किशोर को समझाया कि इसे कोई भौतिक दोष नहीं है। यह तो बहुत उच्च कोटि की साधिका है। समाधिस्थवस्था से चेतनवस्था में आने पर दासीजी ने संत हीरादास का चरण पकड़कर अपने को शिष्य बनाने का आग्रह किया, तो उन्होंने पतिदृपत्नी को दीक्षा मंत्र दे दी।5 अन्य संतों की भाँति सुबचनदासी के साथ भी अनेक महिमामय किंवदंतियाँ भरी पड़ी हैं। उन्होंने उत्तर प्रदेश एवं पंजाब के अनेक स्थानों का भ्रमण किया। गुरुनानक के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा थी, इसीलिए उनके जन्मदृस्थान 'नानकाना' एवं अमष्तसर तक की यात्राएं की।

गुरु नानक निरंकारी, हीरा गुरु को भेजाया है। जुगुल किशोर की नारी, दासी सुबचन कहाया है।6 संत सुबचन दासी के गुरु हीरादास जी (मठ नागाजी, बलिया) 'उदासी सम्प्रदाय' के संत थे। सुबचन दासी अपने जीवन के अन्तिम समय में गाजीपुर जिला के यूसुफपुर तहसील अन्तर्गत 'बालापुर' नामक गाँव में अपने आश्रम की स्थापना की। इसी आश्रम में सत्संग करतेदृ कराते सन् 1950ई. में उन्होंने अपने पार्थिव शरीर का परित्याग किया। लेखक उनके आश्रम का भ्रमण किया है। भ्रमणदृकाल में ही उनका साहित्य मुझे आश्रम से प्राप्त हुआ। उनकी एक प्रस्तर की प्रतिमा एवं समाधि आश्रम में वि4मान है। उनकी शिष्यदृपरम्परा आश्रम में चली आ रही है, जो निम्नलिखित हैदृ संत हीरादास (मठ नागाजी, बलिया) गुरु। संत सुबचन दासी (बालापुर, गाजीपुर) (1870ई.दृ1950ई.) । संत प्रह्लाद दास (बालापुर, गाजीपुर) । संत नानकशरण दास (बालापुर, गाजीपुर) (वर्तमान महंत) बहुत खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि ऐसे साहित्य सम्पन्न कवयित्री का नाम इतिहास के पन्नों से गायब है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' में मात्र इनका परिचय दिया है। सन् 1914 ई. से 1934 ई. के मध्य पाँच भागों में इनका साहित्य प्रकाशित हुआ हैदृ प्रेमतरंगिणी दृ1914 ई., प्रेमतरंगिणी भागदृदो 'विज्ञान सागर' 1918 ई., प्रेमतरंगिणी भागदृतीन 'विदेह मोक्ष प्रकाश', प्रेमतरंगिणी भागदृचार 'अपूर्व विलास' 1923

ई., प्रेमतरंगिणी भागदृपाँच 'अनुभव प्रकाश' द्वि. सं. 1934 ई.। प्रेमतरंगिणी भागदृदो 'विज्ञान सागर' गाजीपुर से एवं शेष साहित्य गोरखपुर से प्रकाशित है।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि वे अधिक पढ़ीदृलिखी नहीं थी। अपने अनुभवों को उन्होंने 'कैथी लिपि' में लिखा है। उनके साहित्य का रूपान्तरण जनदृकल्याण हेतु कैथी लिपि से 'देवनागरी लिपि' में किया गया है। बिहारी हिन्दी की बोली भोजपुरी को प्रधानतरू अपने साहित्य की भाषा बनाते हुए संस्कष्त, खड़ी बोली, अरबी और फारसी के शप्रदों का मिश्रण कर खिचड़ी जबान का प्रयोग किया है। काव्य की रूप विधा दोहा, चौपाई, सवैया एवं कुण्डलियों को अपनाते हुए अनेक लोकदृरागों धाटों, विहाग, खेमटा, कजली, दादरा, सोहर, भैरवी, जतसार, गारी, चैता, वसंत, होली एवं तिताला आदि में अपनी अभिव्यक्ति की है। सुबचन दासी की वाणी में भावों का उफान है, प्रवाह की परम्परा का निर्वाह नहीं।

संत सुबचनदासी ने विभिन्न प्रकार से अपने सिद्धांतों को समझाने का प्रयास किया था। उन्होंने अपने अनुभूति के आधार पर उस परमतत्त्व को अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया। पूर्ण ब्रह्म की अभिव्यक्ति लौकिक शप्रद शक्ति से परे होती है। ''उनकी शोभा केहि विधि मैं गाई, मोसे कहत नहिं जाई7।'' कहकर ब्रह्म को अकथनीय बतलाया है। उस परमतत्त्व को प्राप्त करके भी वर्णन करना वैसे ही असंभव है, जैसे किसी गूंगे व्यक्ति के लिए स्वाद की अभिव्यक्ति कठिन है।8 उनके राम निर्गुण है। वह हददृबेहद से परे, न आता है न जाता है, न जन्म लेता है न मरता है।9 उसका स्वरूप नहीं है। उसे भारी भी नहीं कहा जा सकता, उसे हलका भी नहीं कह सकते। न वह पवन है न पानी है।10 वह अजर अमर अविनाशी है, जो जानता है, वही उसे पा सकता है।11 वह अभाव रूप होता हुआ भी 'कर्त्ता' है सब रसों का आश्रय है, सर्वगन्धमय है। सुबचन दासी के राम सम रूप से समस्त ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त है।12 जिसने उनको जान लिया उसके अति समीप है, जो नहीं जाना उससे दूरातिदूर है। जिस प्रकार से मष्ग की नाभि में कस्तूरी गंध होती है फिर भी उसे पाने के लिए जंगलदृजंगल ढूढ़ता फिरता है।13 मनुष्य भी आत्मतत्त्व को भूलकर उसे पत्थर एवं पानी में खोजता है14 आत्मतत्त्व को स्पष्ट करते हुए बड़े ही सरल शप्रदों में सुबचन दासी कहती हैदृ"जिसने बोलता वही आत्मा, उसकी रोशनी जहाँ में फैली"15 जो बोलता है, वही आत्मतत्त्व है। वह अविनाशी तथा परमतत्त्व का अंश है। धूप के कारण जल सूख जाता है किंतु धूप नष्ट नहीं होता। उसी प्रकार शरीर के पाँचों तत्त्वों का नाश हो जाता है लेकिन आत्मा का नाश नहीं होता।16 आत्मा एवं ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार द्वैत के नष्ट होने पर अद्वैत का अभ्युदय होता है। जैसे बीज में वष्क्ष और वष्क्ष में बीज है। धूप में उष्णता एवं उष्णता में धूप है। जल में तरंग एवं तरंग में जल है। उसी प्रकार से आत्मा में ब्रह्म एवं ब्रह्म में आत्मा है।17 इस प्रकार हम देखते है कि सुबचन दासी की आत्मा एवं ब्रह्म विषयक् अनुभूति केवलाद्वैतवादी के अनुभूति के ही समान है। वस्तुतरू ब्रह्म से भिन्न आत्मा की कोई सत्ता ही नहीं है। दोनों अभिन्न है, एक पदार्थ के दो नाम है।

शंकराचार्य के अनुसार आत्मा ही बह्म है, किंतु माया के कारण दोनों में पार्थक्य की प्रतीति होती है। सुबचन दासी ने माया को ब्रह्म की सृष्टि मानकर कहा हैदृ "हरि तेरी कठिन रे किरतिया, शेश शारदा पावे न पार"18 मन और माया का धनिष्ठ सम्बन्ध है। काम, क्रोद्ध, लोभ, मद, ईर्ष्या, दुर्मति, नातीदृपोता, बेटादृबेटी इत्यदि मन के विकार माया के साथी है। सुबचन दासी ने 'मन' को माया से समझौता न करके सुमति से समझौता करने का संदेश दिया है।19 उन्होने माया को साधना में बांधक मानते हुए कहा हैदृ "ठगिनिया के जाल डगर बिलमइहें"20 संत सुबचन दासी ने परमतत्त्व को कणदृकण में व्याप्त मानते हुए कहा हैदृ"तुहीं धरती तुहीं आस्मां, तुहीं परिपूर्ण छाया है"21 उन्होंने ब्रह्म की सत्ता को सनातन माना है, तब ब्रह्म संयुक्त सषष्टि के विभिन्न उपादान अस्तित्वहीन कैसे हुए ? यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सिद्धान्त निरूपण में सुबचन दासी ने परमार्थदृसत्ता और व्यवहारदृसत्ता दो दषष्टियों को अपनाया है। परमार्थ सत्ता की दषष्टि से वे संसार को असत्य मानती है। "ब्रह्म आनन्द रहे लौ लाई, जगत असार देखाई"22 उन्होंने व्यवहारिक रुप से संसार को कहा हैदृ"यह जग काजल कोट, सँभारी के रहना यारो"23 संत सुबचन दासी ने साधना की दषष्टि से संतदृपरम्परा का ही अनुगमन किया है। संतों ने अज्ञान को ही समस्त पापदृकर्मों का मूल माना है। सुबचन दासी ने मन पर विजय प्राप्त करने को वास्तविक जीत माना है।24 ज्ञान की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए उन्होंने अभ्यन्तरदृअनुभूति को वास्तविक ज्ञान की संज्ञा दी है।25 सुबचन दासी ने कहा है कि 'नाम'(प्रभु का नाम) का बीज बोने से ज्ञान का अंकुर निकलता है।26 प्रायरू महिला संत योग का निषेध करती है किंतु इनकी वाणियों में षट्चक्रवेधन, इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा, ब्रह्मरन्ध्र एवं अष्टांगयोग संबंधी पद बहुतायत मात्रा में मिलते हैं। उन्होंने योग के बारे में कहा हैदृ जोगिया जोग कठिन से होय।

जोग करन को सब कोई धावे, सहजे जोग नहिं होय। शप्रद बान की चोट कठिन है, बिरला ठहरे कोय।।27 योग के द्वारा साधक साध्य से जुड़ने का प्रयास करता है। यह प्रयास कई प्रकार के होते हैंदृकायिक साधना (हठयोग), मानसिक साधना (ध्यानयोग, लययोग) एवं सहज साधना। सुबचन दासी ने हठयोग, ध्यानयोग पर विशेष बल दिया है। उन्होंने 'मीन' एवं 'विहंगम मार्ग' का अनुसरण कर ध्यान लगाने की बात कहीं है।28 हालांकि सुबचन दासी सबसे अधिक गुरु नानक से प्रभावित थी फिर भी वह योग साधना में नाथपंथी योगियों एवं कबीर आदि संतों के निकट हैं। सुबचन दासी ने भक्ति की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। उन्होंने कहा है कि लोभी, लंपट एवं लालची व्यक्ति से भक्ति संभव नहीं है। भक्ति तो वहीं कर सकता है, जो लोकदृलाज का परित्याग कर अपने साध्य के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पित कर दें।

लोभी लंपट लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करै तन त्यागी के, लोक लाज सब खोय।।29

भक्ति करने में सुबचन दासी के समक्ष मीरा जैसी पारिवारिक बांधाएं नहीं थी। इसका कारण था उनके पति युगल किशोर जी की साधुता एवं सज्जनता। भक्ति के अभाव में मनुष्य उल्लू

के समान है। फल के बिना वक्ष एवं जल के बिना कुआँ की स्थिति भक्तिहीन व्यक्ति की होती है।30 "मै अबला अज्ञान, द्वार छोड़ि कहाँ जाऊँ"31 कहकर उन्होंने शरणागत भाव को आत्मसात किया है।

नाम जप' पर विशेष ध्यान देते हुए कहा हैदृ "बिनु भजने तन मष्तक कहाई रे"32 प्रेम प्राणी मात्र के हृदय की एक सहज वष्त्ति है। हृदय में हरि के प्रति अनुराग से समस्त विकारों का नाश हो जाता है।33 शुद्ध और सात्विक प्रेम ही श्रद्धा का योग पाकर भक्ति का रूप ग्रहण कर लेता है। प्रेम विरह में प्रिय से मिलन हेतु अत्यंत व्याकुलता होती है। एक स्थान पर उन्होंने कहा है कि मेरे प्रिय अमरपुर में बस गये हैं और मुझे कलयुग में बसाये हैं। मेरे किस अवगुण के कारण प्रिय मुझे त्याग दिये हैं। मुझसे जुदाई बर्दाश्त नहीं हो रही है। रातदृदिन अच्छा नहीं लगता है।

विरह मेरे हृदय में अपना निवास स्थानदृबनाया हुआ है।34 सुबचन दासी के साहित्य में मोक्ष संबंधी पद बहुत ही कम मात्रा में मिलते हैं। इसका कारण यह है कि भक्त मुक्ति की चाहत नहीं रखता है। वह तो अपने साध्य के साथ तदाकारता को ही चरमोन्नति मानता है। सुबचन दासी जीवन्मुक्ति को ही परमकाम्य समझती थी। जीवत समझे जीवत बूझे, जीवत मरना मुक्ति जानो।"35

संत सुबचन दासी अन्य संतों की भाँति जातिवाद का खंडन किया है। ऊँचदृनीच का भेद मिथ्या है क्योंकि सबके अन्दर ईश्वर जाति वर्ण का ध्यान न रखते हुए वि4मान है।36 जातिदृपाँति की समरसता पर अपना अभिमत प्रकट करते हुए उन्होंने साफ शप्रदों में कह दिया है कि ईश्वर ऐसे दयालु है, जो उनका भजन करता है, उसको जाति, वर्ण, कुल एवं कर्म पर भी न ध्यान देते हुए अपने में समाहित कर लेते हैं।37 कर्मकांड का विरोध करते हुए सुबचन दासी ने कहा है कि कर्मकांड के बंधन में जो फँस जाता है, उसे कर्मकांड काल रूप धारण कर खा जाता है।

कर्मदृअकर्म छुटने के पश्चात् ही व्यक्ति को वास्तविक सुख की प्राप्ति होती है।38 पाखंडी वेशधारी साधुओं की खबर लेते हुए कहा हैदृ"हाथ सुमिरनी बगल कतरनी, ठगे फिरे मूढ जानी रे"39 तीर्थ, व्रत एवं मूर्तिदृपूजा इत्यादि का उन्होंने अत्यंत शालीनता पूर्वक विरोध किया है। इनकी वाणी में कबीर की भाँति उग्र विरोध नहीं है। उन्होंने कहा है कि ईश्वर को हम तीर्थ स्थानों में ढूढ़ते हैं, कभी अपने शरीर में खोजने की कोशिश नहीं की।40 तीर्थ, व्रत, पाहनदृपूजा भ्रम का बोझ है। इससे माया का बंधन कटता नहीं बल्कि और व्यक्ति माया में फँसता जाता है।41 संत सुबचन दासी हिन्दूदृमुस्लिम एकता का प्रतिपादन करती हुई कहती है कि हिन्दू और मुसलमान एक ही हैं। एक ही स्थान से आएं हैं। संसार में आने के पश्चात् दोनों हिन्दूदृमुसलमान में बँट गये। मन्दिर एवं मसजिद के चक्कर में अपने आप को भूल गये। दोनों की बुद्धि भ्रमित हो चुकी हैं। दोनों अपनेदृअपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ बताकर अहंकार के मद में है। हिन्दू हर्षित होकर बकरा एवं मुसलमान गाय कांटता है। उसके दिल में दया नाम की मानवता नहीं है। उसे यह नहीं पता कि बकरा में राम एवं गाय में खुदा है। हिन्दू अपना मूर्दा गंगा में प्रवाहित करता है और मुसलमान कब्रगाह में दफन करता हैदृ एक ही तुरुक हिन्दू, एक ही जगह से आवहीं। दोबिधा की रसी बटी के, हिन्दू तुरुक बधावहीं।। हिन्दू भुलावे मंदिल में, तुरुक महजीद में भूला। दुनों की मति भुलाया,

दुनों अहंबुद्धि में फूला।। बकरा में राम बोले है, गइया में बोले खोदाई। दिल में रहम ना आवहीं, हरषित हो छुरी चलाई।। अपना मुर्दा ले जावै, कबूर गंगा में लगावै। सुबचनदासी समुझावे, बदला पुरबुज में पावै।।42

भारतीय समाज में नारी की विचित्र विरोधाभासमयी स्थिति रही है एक ओर उसे देवी एवं पूज्या माना गया दूसरी ओर मोक्ष मार्ग में बांधा डालने वाली माया बताया गया। सुबचन दासी के काव्य में नारी के दो रूप मिलते हैंदृ एक कामिनी दूसरा पतिव्रता तथा सतीदृसाध्वी का रूप। जहाँ तक मै संत साहित्य में महिला संतों को पढ़ा हैदृमीराबाई, दयाबाई, सहजोबाई एवं बावरी साहिबा इत्यादि संत कवयित्रियों ने नारी निन्दा नहीं की है। सुबचन दासी उन महिला संतों से बिल्कुल अलग नारी के दुर्बल पक्ष पर ही आधात किया है। नारी के कामिनी रूप का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि नारी अग्नि की कुण्ड है जिसकी उष्णता दूर तक जाती है। नारी का सुन्दर भाल सर्प की मणि के समान है। नारी के साहचर्य से मनुष्य ब्रह्मचर्य, आयु, बल, बुद्धि खो देता है। नारी विष के समान है, जिसे देखते ही विष चढ़ने लगता है और उसे खाने पर मर जाता है।43 वहीं पर ऐसे पुरुषों की भी निन्दा की हैं जो परनारी में अनुरक्त रहते हैं। उनके विचार से पराई स्त्री में अनुरक्त रहने वाला अल्पकाल के लिए भले ही आनन्द का अनुभव करें, अन्ततरू वह समूल रूप से नष्ट हो जाता है।

नारी कहों की नाहरी, कोई जन लावो संग। दसों शीश रावन कटे, पर नारी के संग।। पर नारी परसन्न होय, दे ना सके कुछ और। मूत्र पात्र आगे धरे, यहीं नरक की ठौर।।44

इस प्रकार से संत सुबचन दासी का संपूर्ण साहित्य जनदृकल्याण एवं समाजहित हेतु अपेक्षित है। उन्होंने उस परमसत्ता को सषष्टि के समस्त उपादानों में माना हैं। मन का भ्रम ही माया है। जगत नाशवान है। ज्ञान, योग, भक्ति, प्रेम के मार्ग द्वारा प्रभु को जाना जा सकता है। सामाजिक विचारधारा के अन्तर्गत जातिवाद एवं वाह्याचार का खंडन, तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा का विरोध, हिन्दूदृमुस्लिम एकता का प्रतिपादन तथा कामिनी स्त्री की धोर निन्दा, पतिव्रता स्त्री की प्रशंसा को अपने काव्य का विषय बनाकर समाज को एक नया मार्ग दिखाया। इस छोटे से आलेख में सुबचन दासी की एक झलक मात्र मिलती है। इनको देखने के लिए तो स्वतंत्र शोध की आवश्यकता है।

संदर्भ

1— *जिला गाजीपुर मौजा डेहमा, सुबचन जन्म पाया है। भारत खण्ड में डेहमा धन्य है, कायस्थ कुल कमल खिलाया है।। दृसुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ4, अपूर्व विलास, पृष्ठ 1*

2— *पिता दलसिंगार धन जग में, धनी मुन्नी कोख जन्मी है। दृवही, पृष्ठ 1*

3— *जुगुल किशोर की नारी, सुबचन दासी सुन्न मांही। दृवही, पृष्ठ 2*

4— *राम हीरा दास गुरु नागा है उदासी हो रामा। ब्रह्म ऋषिदृब्रह्म ऋषि सुबचन दासी हो रामा।। दृसुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ2, विज्ञान सागर, पृष्ठ 44*

5— *हीरादास गुरु हमारे दिल में समा रहा है। दृसुबचन दासी, प्रेमतरंगिणी, पृष्ठ 8*

6— वही, पृष्ठ 7

7— सुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ2, विज्ञान सागर, पृष्ठ 55

8— अद्भुत सुख कहां लगि मैं गावों, गूंगा गुड़ के सवदवा ना। दृवही, पृष्ठ 69

9— हद्द से बेहद्द के पारे, धुन उठे सुन्न से। आवे न जावे, जन्म मरन विनासा राम।। दृवही, पृष्ठ 57

10— ना भारा ना हलका है तू नहिं पवना नहिं पानी। रेख रूप कछु नहिं पावों, कौन शप्रद की बोल।। दृवही, पृष्ठ 57

11— सुबचन दासी कष्त 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ4, अपूर्व विलास, पृष्ठ 119

12— सब में प्रयापक एक रहाई, आत्म ब्रह्म कहाई। दृसुबचन दासी, प्रेमतरंगिणी, पृष्ठ 2

13— मिरगा के नाभी में सुगंध कस्तुरिया हो। दृसुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ2, विज्ञान सागर, पृष्ठ 36

14— आतम ब्रह्म को त्यागी, पाहन ढूढ़े धावे आरे हां।। दृवही, पृष्ठ 36

15— सुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ5, अनुभव प्रकाश, पृष्ठ 90

16— जल सुखि जाय धाम ना सुखै, तत्व तन नसि आत्मा न दूखै। दृवही, पृष्ठ 16

17— द्वैत मिटै अद्वैत देखावे, हित अनहित में आतम दरसावै। बीज में बक्ष बक्षा में बीज है, सुरुज में धाम उष्णता जनावे। आत्मा में ब्रह्म आत्मा ब्रह्म ही में, जल में तरंग बुलबुला कहावे।। दृवही, पृष्ठ 16

18— प्रेतरंगिणी, पृष्ठ 62

19— माया मद पी के मन डोमधाउज करे। काम क्रोध लोभ डाह इर्षा पलिवार, नाती पोता कलह कलपना अपारे। दुर्मति कुमति अरोसिन परोसिन, निसि दिन कलह में संसार को हरे। मन के बस मे पड़हु जनि प्यारे, सुमति के संग सुबचन मन मारे।। दृसुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी', भागदृ4, अपूर्व विलास, पृष्ठ 118

20— सुबचन दासी, प्रेमतरंगिणी, पृष्ठ 19

21— सुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी', भागदृ4, अपूर्व विलास, पृष्ठ 1

22— सुबचन दासी, प्रेमतरंगिणी, पृष्ठ 2

23— सुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ4, अपूर्व विलास, पृष्ठ 73

24— मन को जीता जगत जीता, सुबचन दासी मन मीता। दृसुबचन दासी, प्रेमतरंगिणी, पृष्ठ 12

25— अन्तर में ज्ञान अनुभौ पावै।दृसुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ4, अपूर्व विलास, पृष्ठ 5

26— नाम के बीज बोअन जब लागी, ज्ञान के अँखुआ दिन दिन जागी। दृसुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ5, अनुभव प्रकाश, पृष्ठ 7

27— सुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ2, विज्ञान सागर, पृष्ठ 40

28— मीन के मारग विहंग के चाल, अचल है ध्यान सुमेर। दृवही, पृष्ठ 57

29— वही, पृष्ठ 40

30— फल बिन वक्ष निर बिन कूपा, भगति हीन नर उल्लू सरुपा। दृसुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी'

भागदृ5, अनुभव प्रकाश, पृष्ठ 4

31— सुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ4, अपूर्व विलास, पृष्ठ 73

32— सुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ2, विज्ञान सागर, पृष्ठ 49

33— हरि अनुराग उठे उर मांही, सकल माया भर्म नास हो जाहीं। दृसुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी', भागदृ5, अनुभव प्रकाश, पृष्ठ 4

34— सुबचन दासी, प्रेमतरंगिणी, पृष्ठ 62

35— सुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ4, अपूर्व विलास, पृष्ठ 6

36— सबमें प्रयापक एक रहाई जाति बरन बिलगाई। दृसुबचन दासी प्रेमतरंगिणी, पृष्ठ 4

37— जाति बरन कुल करम न जानी, हरि को भजे सो हरि में समानी। दृवही, पृष्ठ 30

38— कर्म कांड जिसने फँसा, काल रूप होय खाय। कर्म अकर्म दूनों छुटे, तब सुबचन सुख पाय।। दृसुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ5, अनुभव प्रकाश, पृष्ठ 4

39— सुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ2, विज्ञान सागर, पृष्ठ 67

40— भूले भूले फिरे तीरथ में, खोजत नाही अपने एहि तन में। दृसुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ 4, अपूर्व विलास, पृष्ठ 29

41— तीरथ बर्त पाहन पूजा, भरम में सिर लिये बोझा। दृसुबचन दासी 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ2, विज्ञान सागर, पृष्ठ 21

42— सुबचन दासी, 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ5, अनुभव प्रकाश, पृष्ठ 88दृ89

43— वही, पृष्ठ 73

44— सुबचन दासी 'प्रेमतरंगिणी' भागदृ2, विज्ञान सागर, पृष्ठ 40